



तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्णित आचरण व्यवस्था

योगनाथ शुक्ल

शोधच्छात्र (एस०आर०एफ०), संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय का सबसे प्रामाणिक तथा ज्ञान के अगाध भण्डार के रूप में वेदों को स्वीकार किया जाता है। वेदों में ही सम्पूर्ण प्राचीन संस्कृति की झलक दिखाई पड़ती जो आज भी कुछ न कुछ सर्वत्र अपनी उपयोगिता से दृष्टिगत होती है। जो भी हमारे शाश्वत सत्य हैं सभी इन्हीं वेदों की ही देन हैं तथा उपनिषद् वाङ्मय में भी इन्हीं शाश्वत यथार्थों का ही प्रामाणिक रूप से विवेचन किये जाने के कारण सर्वदा समाज में प्रसंसनीय तथा योगदान देने वाले रहे और आज की भाग-दौड़ की जिन्दगी इनकी उपयोगिता कहीं और ही अधिक हो गयी है। उपनिषद् मानव के कल्याण की परम औषधि हैं ये वेद के अन्तिम भाग के रूप में जाने जाते हैं तथा वेदों के सार हैं अथात् इनका स्रोत वेद ही हैं मुक्तिकोपनिषद् में इनकी संख्या 108 बतायी गयी है (सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्) परन्तु प्रामाण्य रूप में इनकी संख्या 10 कही गयी है जो इस प्रकार है—

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य-तैत्तिरिः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश ॥

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरेय, ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक माने जाते हैं।

प्रो० विन्टरनिट्स ने उपनिषदों के महत्त्व के विषय पर लिखते हुए शोपेनहावर (shopenhauer) के विचारों को बताया कि उनके अनुसार "उपनिषद् मेरे जीवन में शान्ति के साधन रहे हैं और मृत्यु में भी शान्ति के साधन रहेंगे"। मुगलकाल का प्रसिद्ध शासक दाराशिकोह ने उपनिषदों की उपयोगिता को समझकर ही इनका अनुवाद सिर-ए-अकबर (महान-रहस्य) नाम से करवाया, इस कार्य से वह इतिहास में सर्वदा के लिये अपना नाम दर्ज करा लिया है। स्वामी विवेकानन्द जी ने इन्हीं उपनिषदों में निहित ज्ञान के बल पर अमेरिका तक अपना परचम लहराया।

यजुर्वेद की दो शाखाओं (शुक्ल तथा कृष्ण)में कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के अन्तर्गत इसकी गणना की जाती है। इस उपनिषद् को तीन वल्लीयों (शीक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली तथा भृगुवल्ली)में विभाजित किया गया है तथा प्रत्येक वल्लीयों को अनेकों अनुवाकों में विभक्त किया गया है।

मन में एक प्रश्न उठता है कि आचरण क्या है? इसका उत्तर सहज भाव से मनुस्मृति में प्राप्त हो जाता है कि आचार ही पृथ्वी पर रहने वाले चारों वर्णों के लिये शाश्वत है इसे श्रुतियों तथा स्मृतियों में परम धर्म के नाम से कहा गया है क्योंकि जो शाश्वत है वह कभी समाप्त नहीं होता है जो कभी समाप्त नहीं होता वह सर्वदा उपयोगी होता है।

चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ॥ मनुस्मृति
1/107-108।

यह आचरण व्यवस्था कुल-कम से आती रहती है इसी को आचरण नाम से कहा गया है – तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ मनुस्मृति 2/18।

सत्य का आचरण

इस उपनिषद् में मनुष्य के शाश्वत नियमों को बड़ी ही कठोरता से पालन करने के लिये कहा गया है, इस उपनिषद् के प्रथमावल्ली के पहले ही अनुवाक में ऋत तथा सत्य बोलने के लिये उपदेशित किया गया है 'क्योंकि सत्य बोलने वाले व्यक्ति का कभी अधःपतन नहीं होता है। सत्य के मार्ग पर चलने से ही व्यक्ति अपना कल्याण तथा दूसरे के कल्याण के विषय में विचार करता है नहीं तो यदि वह छल करने वाला है, झूठ बोलने वाला है तो वह स्वार्थी तथा जनभावनाओं से सदा नीचे गिरा रहता है सर्वदा अनेक समस्याओं में ही जकड़ा रहता है। इसीलिये तैत्तिरीयोपनिषद् में सर्वप्रथम इसी सत्य के विषय में ही कहा गया है। सत्य का आचरण करने वाला व्यक्ति कभी भी धोखा नहीं खाता है।

परिश्रम तथा मधुर वाणी का आचरण

इसी प्रकार से परिश्रम करने के लिये कहा गया है, ऋषि कहता है कि मेरा शरीर परिश्रम योग्य हो २ आलसपन मेरे शरीर में न रहे यह सत्य है कि परिश्रम करने वाला व्यक्ति सर्वदा आगे ही बढ़ता है उसको रोकने के लिये सम्पूर्ण शक्तियाँ नाकाम हो जाती हैं इसलिये शरीर से परिश्रम करना चाहिए। अपनी जिह्वा से मधुर वाणी को निकालना चाहिए³ जो वाणी किसी के कर्ण को कटु लगे इस प्रकार के वचनों को नहीं बोलना चाहिए, कभी किसी को गाली तथा क्रोध को उत्पन्न करने वाली वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि कभी-कभी गाली-गलौज में मारपीट तथा जान तक जाने की सम्भावना हो जाती है। इसी प्रकार से कानों के द्वारा बहुत कुछ सुनना चाहिए⁴। क्योंकि कभी-कभी कुछ बातें बताने वाले के द्वारा असत्य बतायी जाती हैं श्रोता उन बातों को विना विचार किये ही सत्य समझकर गलत कदम उठा लेता है जिससे उसका नुकसान होता है इसीलिये बहुत अधिक सुनने के लिये कहा गया है। इसी प्रकार से मनुस्मृति में भी कहा गया है कि सत्य बोलो, प्रिय

¹—ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/1/1। सत्यं वद। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/1। प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/4/2।

²—शरीर मे विचर्षणम्। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/4/1।

³—जिह्वा मे मधुमत्तमा। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/4/1।

⁴—कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/4/1।

बोलो, सत्य अप्रिय का भाषण मत करो प्रिय हो तथा सत्य न हो इस प्रकार की भी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए यही सनातन धर्म कहता है सनातन अर्थात् यही सत्य धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के द्वारा बताया गया है ⁵।

स्वाध्याय का आचरण

विद्यार्थियों को स्वाध्याय करने के लिये कहा गया है क्योंकि विद्यार्थी का प्रमुख कार्य विद्याग्रहण ही है यही उनका कर्म है इसके विपरीत यदि किसी कार्य में संलिप्त होते हैं तो वह कर्म नहीं अपितु विकर्म है जैसे सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेना, छल प्रपंच में पड़ना, इलेक्ट्रानिक मीडिया का दुरुपयोग करना इसीलिये भारतीय संविधान में भी 14 वर्ष तक के बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा का विधान किया गया है तथा उन्हें पढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है ⁶।

शम तथा दम का आचरण

आज के समय कोई व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं कर पा रहा है जिससे अनेक प्रकार के अपराध हो रहे हैं जैसे भ्रष्टाचार, बलात्कार, स्वार्थसिद्धि, घूसलेना, झूठ बोलना आदि इन सबको रोकने के लिये व्यक्ति को इन्द्रिय पर संयम रखना चाहिए इन्द्रियाँ चञ्चल होती हैं इनको रोकने का प्रयास करना चाहिए। गीता में अर्जुन श्री कृष्ण से कहता है कि इन्द्रियाँ तो चञ्चल हैं (चञ्चलं हि मनः कृष्ण) इन्हें कैसे रोका जाय? इसके उत्तर में श्री कृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से सभी इन्द्रियों के द्वारा कर्मयोग का आचरण करो तो तुम्हारी इन्द्रियाँ स्थिर हो सकती हैं ⁷। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिए इसी को शम कहते हैं इसमें बाह्य लुभावने विषयों से मन का निग्रह करना अर्थात् मन को रोकना चाहिए तथा दम के द्वारा श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाया जाता है यह प्रत्येक आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास)के व्यक्ति के लिये अनिवार्य है ⁸।

तप का आचरण

योग भाष्यकार व्यास जी के अनुसार द्वन्द्व का सहन करना ही तप है⁹। द्वन्द्व का तात्पर्य है कि शीत, ऊष्ण, बुभुक्षा, पिपासा आदि का सहन करना। जैसे शीत ऋतु में शैत्य का प्रभाव अधिक रहता है उस मौसम के प्रभाव को सहन करना जिससे शरीर बलशाली हो उसमें सहन करने की क्षमता आये, ग्रीष्म ऋतु में ऊष्णता अधिक रहती है उस प्रकृति के प्रभाव को सहन करना। शरीर यदि प्रकृति के साथ रहता है तो उसमें रोगप्रतिरोधकक्षमता की वृद्धि होती है तथा शरीर को यदि प्रकृति से पृथक् करने का प्रयास किया जाता है तो उससे शरीर की रोग प्रतिरोधकक्षमता क्षीण होती है। आज के समय में यह बहुतायत देखा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रोग से ग्रसित है उसका सबसे बड़ा कारण यही है कि शरीर

⁵—सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।। मनुस्मृति 4/138।

⁶—अमायन्तु ब्रह्मचारिणः। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/4/2। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/1।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/9/1। स्वाध्याय प्रवचनान्मां न प्रमदितव्यम्। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/1।

⁷—यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुनः। कर्मन्दिनैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। श्री मद् भगवद्गीता 3/7।

⁸—शमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/9/1। शमायन्तु ब्रह्मचारिणः। दमायन्तु ब्रह्मचारिणः। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/4/2।

⁹—तपो द्वन्द्वसहनम्। यो0सू0भा02/32।

को लगातार प्राकृतिक ऊर्जा नहीं मिल पाती है। तप से जब समस्त अशुद्धियों (अधर्मादियों) का हान हो जाता है तो शरीरसिद्धि तथा इन्द्रियसिद्धि की प्राप्ति हो जाती है¹⁰। इसीलिये तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि तप का आचरण करना चाहिए ¹¹।

धर्म का आचरण

धर्म के आचरण का अभिप्राय है अपने कर्म के अनुसार ही फल की प्राप्ति करो इसीलिये कहा जाता है कि कर्म ही धर्म है। किसी से कुछ गलत ढंग से प्राप्ति की इच्छा न करना, दूसरों के कर्मों का सम्मान करना, अपने तथा दूसरे के कल्याण के विषय में सोचना, जो बात अपने को अच्छी न लगे उसका प्रयोग दूसरों पर न करना ही धर्म का आचरण है इसीलिये कहा गया है कि “आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्”। इसी को तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि धर्म के अनुसार ही आचरण करना चाहिए तथा धर्म के साथ कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए¹²। इसके अतिरिक्त सभी जीवों की रक्षा करना, उनका पालन-पोषण करना किसी प्रकार से हिंसित न करना इत्यादि मनुष्य के धर्म हैं यद्यपि यह धर्म शब्द बहुत ही व्यापक है इसे व्याख्यायित करना सरल कार्य नहीं है फिर भी यह कहा जा सकता है कि इसके अन्तर्गत समस्त भावनाओं की रक्षा का विषय विद्यमान रहता है।

पूज्य के प्रति आचरण

पूज्य का तात्पर्य है जो व्यक्ति पूजा योग्य होता है तथा सम्मानित होता है अपने से बड़ा होता है उसके प्रति किस प्रकार का आचरण करना चाहिए इसका निदर्शन बहुत ही स्पष्ट रूप से इस उपनिषद् में किया गया है। माता को देवता के रूप में उपस्थापित किया गया है, पिता को देव के रूप में स्थान दिया गया है, आचार्य को देवता की श्रेणी में रखकर उसे सम्मान दिया गया है तथा अतिथि को देवतुल्य माना गया है ¹³। माता को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के 145 वे श्लोक के अनुसार उपाध्याय से दश गुना आचार्य श्रेष्ठ है, आचार्य से सौ गुना पिता श्रेष्ठ है तथा पिता से हजार गुना माता की श्रेष्ठता है। ये जो पूज्य वर्ग में ऊपर रखे गये हैं सभी के प्रति आदर भाव से पेश आना चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए, उनके अच्छे गुणों को स्वीकार करना चाहिए तथा जो उनके अवगुण उनको कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिए। इसी लिये आचार्य शिष्य को कहता है कि जो भी हमारे अच्छे चरित्र हैं हे शिष्य उन्हीं को स्वीकार करो, दूसरे अवगुणों का ग्रहण न करो ¹⁴।

अन्न के प्रति आचरण

अन्न खाद्य पदार्थ हैं जिसको खाकर ही मनुष्य अपनी क्षुधा को शान्त करता है। इसी से सभी जीवों का जीवन सम्भव है इसीलिये इसे सभी प्राणियों में श्रेष्ठ कहा गया है यह सभी रोगों की औषध कहा गया है क्योंकि जो व्यक्ति शुद्ध भोजन समयानुसार करता है उसकी रोगप्रतिरोधक क्षमता सही होने से रोगों का शिकार नहीं होता है। इसी से सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है क्योंकि अन्न

¹⁰ कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः। यो0सू02/43।

¹¹—तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/9/1।

¹²—धर्मचर। धमान् प्रमदितव्यम्। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/1।

¹³—मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/2।

¹⁴—यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/2।

को खाने से ही वीर्य बनता है उसी वीर्य से ही जीवों की उत्पत्ति होती है । तथा उत्पन्न हुआ जीव अन्न को खाकर ही शारीरिक तथा मानसिक विकास करता है। क्योंकि कोई व्यक्ति कभी किसी कारणवश एक दिन भी भोजन नहीं प्राप्त करता है तो वह अपना गुस्सा किसी दूसरे पर प्रकट करता है इसलिये अन्न का महत्त्व संसार में प्रतिदिवस देखा जाता है । इसलिये अन्न की रक्षा करनी चाहिए इसका कभी अपव्यय नहीं करना चाहिए। जितनी मात्रा में उपयोग हो सके उतना ही पकाना चाहिए नहीं तो फेंकने से उसका नुकसान हो जाता है किसानों प्रति अपनी सहज भावना प्रकट करनी चाहिए एवं उनके नुकसान के प्रति सर्वदा सचेत रहना चाहिए तथा अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिए इसीलिये अन्न को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है ¹⁵।

दान के प्रति आचरण

शास्त्रों में धन की धन की तीन को स्वीकार किया गया है दान, भोग तथा नाश अर्थात् सबसे उत्तम गति दान की स्वीकार की गयी है । दान किसे देना चाहिए, क्यों देना चाहिए, किस भाव से देना चाहिए इसका बहुत ही सुन्दर विवेचन उस उपनिषद् में प्राप्त होता है जैसे दान दाता को दान देने में श्रद्धा होनी चाहिए, विना श्रद्धा के दान नहीं देना चाहिए, अपनी परिस्थिति के अनुसार ही दान देना चाहिए यदि किसी की आय 5000 रुपये महीने है तो उसको अपने अनुसार ही दान देना चाहिए यह नहीं कि पाँचों हजार दान कर दे, दान जो भी करें उसमें भाव होना चाहिए। यह दान कभी किसी गरीब को देखकर उसकी स्थिति को देखकर लज्जावश दे देना चाहिए। कभी-कभी भयवश भी देना पड़ता है जैसे किसी एकान्त स्थल पर आप हैं वहाँ कोई है जिससे डर लगने लगता है तो उसको कुछ दान कर दिया जाता है जिससे हम सुरक्षित बचे रहें तथा मित्रता को निभाने के लिये भी देना चाहिए जैसे आपका कोई मित्र है उसे कुछ धन की आवश्यकता है तो उसका सहयोग करना संविदा दान है अर्थात् आपने मित्रता को बनाये रखने के लिये मित्र को दान दिया ¹⁶।

उपर्युक्त प्रमुख आचरणों के विषय में बहुलता से इस उपनिषद् में बताया गया है जिसको अपनाकर मनुष्य अपने जीवन को सुखी, सरल तथा शान्तिपूर्ण बना सकता है यही इस शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य है ।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. वैदिक वाङ्मय का इतिहास – कपिलदेव द्विवेदि ।
2. तैत्तिरीयोपनिषद् – गीताप्रेस गोरखपुर
3. बृहदारण्यकोपनिषद् – गीताप्रेस गोरखपुर
4. नीतिषतक – तारिणीष झा
5. मनुस्मृति – विजयशंकर पाण्डेय
6. श्री मद् भगवद्गीता – गीताप्रेस गोरखपुर
7. पातञ्जलयोगसूत्र – सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव
8. वेदान्तसार – सन्तनारायण श्रीवास्तव

¹⁵—अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वोषधमुच्यते । अन्नाद् भूतानि जायन्ते । जातान्यन्नेन वर्धन्ते । तस्मादन्नं तदुच्यते इति । तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1/11, अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् । अन्नादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । अन्नेन जातानि जीवन्ति । तैत्तिरीयोपनिषद् 3/1/1 ।

अन्नं न निन्द्यात् । तैत्तिरीयोपनिषद् 3/7/1

¹⁶—श्रद्धया देयम् । श्रिया देयम् । द्विया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् ।

तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/3 ।